इकाई 9 स्तरीकरण के आधार के रूप में जातीयता

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- जैविक उत्पत्ति, सांस्कृतिक समांगता और जातीय स्वचेतना पर आधारित विभिन्न अवधारणाओं के बारे में बता सकेंगे;
- सांस्कृतिक जातीयता और राजनीतिक जातीयता के नजरिए से जातीयता के उदय को समझा सकेंगे;
- जातीय स्तरीकरण और जातीय राष्ट्रवाद के बारे में बता सकेंगे; और
- राष्ट्र और जातीय समूह, राष्ट्रीयता और जातीयता के बीच अंतर करते हुए भारत के विशेष संदर्भ में जातीय राष्ट्रवाद के बारे में बता पाएंगे।

9.1 प्रस्तावना

पिछली सदी के आखिरी तीन दशकों से जातीय समूह, जातीय पहचान और जातीयता जैसे शब्दों का चलन अकादमीय विश्लेषण में ही नहीं बल्कि संचार माध्यमों में भी आम हो गया है। असल में, वर्तमान समय में जातीयता ने एक सबसे आम श्रेणी का रूप धारण कर लिया है जिसे आज का मनुष्य अपने अनुभव और व्यवहार का मूल्यांकन करने, अपने आसपास की दुनिया को समझने-जानने और यह बताने के लिए करता है कि वह क्या है। कुछ समाजों में हालांकि जातीय श्रेणियां और संबंध अन्य समाजों से अधिक महत्व रखते हैं, लेकिन जातीयता बीसवीं सदी की सबसे विश्वव्यापी मूलभूत धारणाओं में एक है। यह विकसित और विकासशील देशों में अतीत और वर्तमान दोनों में देखने को मिलती है। जिन जनजातियों, गांवों को अभी तक सिर्फ तीसरी दुनिया के समाजों की विशेषता के रूप में देखा जाता है, वही अब आधुनिक समाजों की नई राज्य संरचनाओं का अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं, क्योंकि वे जातीय समूहों का

स्वरूप धारण कर रहे हैं जिसमें अलग-अलग कोटि में एक सांस्कृतिक अनूठापन विद्यमान है। इसका परिणाम यह रहा है कि जातीयता को सैद्धांतिक और अन्वेषणात्मक महत्ता मिल गई है।

9.2 जातीयता: इतिहास, परिभाषा और उसके घटक

आइए, अब हम जातीयता के इतिहास, उसकी परिभाषा और उसके घटकों के बारे में जानें।
'जातीय' (एथनिक) शब्द का एक लंबा इतिहास है। इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द *एथनोस* से हुई है जिसका अर्थ राष्ट्र है, लेकिन इसे एक राजनीतिक इकाई मानने के बजाए एक रक्त या वंश वाले व्यक्तियों की इकाई माना जाता है। इसके विशेषणात्मक पर्याय *एथनिकोस,* जिसे लैटिन में *एथनिकस* कहा जाता है, का अभिप्राय गैर ईसाई, उन 'अन्य लोगों' से है जिनकी आस्था दूसरे धर्म या मत में है। अंग्रेजी में लंबे समय तक इस शब्द को उन लोगों के लिए प्रयोग किया जाता रहा जो न तो ईसाई हैं और न ही यहूदी यानी मूर्तिपूजक। इसे अगर हम दूसरे शब्दों में कहें तो जातीय लोग वे 'अन्य लोग' थे जो 'हम' जैसे नहीं थे। लेकिन बीसवीं सदी में इस के ग्रीक मूल को फिर से प्रयोग में लाया जाने लगा। इसका अर्थ बदल दिया गया और "वे बनाम हम" का भाप खत्म हो गया। मगर इसे अब 'अन्य लोगों' को ही नहीं बल्कि 'हम लोगों' को भी परिभाषित करने के लिए एक खास तरीके के रूप में प्रयोग किया जाता है।

जातीय लोगों के फ्रेंच पर्याय, *एथनी* का प्रयोग करते हुए ऊमेन उन्हें ऐसे लोगों के रूप में परिभाषित करते हैं जिनकी विशेषता एक साझा इतिहास, साझी परंपरा, भाषा और जीवनशैली होती है। मगर इस परिभाषा के साथ उन्होंने 'घर या जड़ से उखड़ने' की भावना को भी जोड़ दिया है। दूसरे शब्दों में उनके अनुसार जातीयता तब बनती है जब सैनिक विजय, उपनिवेशीकरण या पलायन के कारण लोग अपनी मातृभूमि, अपनी मिट्टी से उखाड़ दिए जाते हैं और एकदम नए वातावरण में विभिन्न प्रकार के समूह एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं। इस तरह से विस्थापित लोग जब अपनी भूमि से दूर होते हुए भी अपनी 'देशीय' जीवन शैली को ही अपनाते हैं तो उन्हें जातीय लोग कहा जाता है।

9.3 जातीयता की आंरभिक धारणा

उपलब्ध साहित्य पर दृष्टिपात करने से हमें जातीयता की तीन प्रचलित धारणाओं का पता चलता है: जैविक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक। जैविक धारणा एक सामूहिक आनुवंशिक उत्पत्ति यानी वंशक्रम पर आधारित है। इसका मतलब यह हुआ कि जातीयता को नस्ल के पर्याय के रूप में ही लिया गया है। आंरभिक अध्ययनों में जैविक कारकों को ही जातीयता के घटकों के रूप में लिया गया और उपनिवेशवाद के संदर्भ में नस्ल और नस्लवाद की उत्पत्ति पर अधिक ध्यान दिया गया। इस नजरिए में जातीयता के सांस्कृतिक पहलू को पूर्णत: अनदेखा कर दिया गया था। जातीयता की दूसरी अवधारण एक नया चिंतन, एक नयी सोच लेकर चली, जिसने नस्ल को जातीयता से अलग किया। इस नजरिए में नस्ल को एक सांस्कृतिक पहलू के रूप में देखा गया। इसमें जातीय समूह को परिभाषित करने के लिए सिर्फ समान शारीरिक लक्षणों को ही काफी नहीं समझा गया बल्कि विभिन्न समूहों में विद्यमान सांकेतिक अंतरों को इसमें जातीयता का आधार बनाया गया है। जैसे मूल्य प्रथाएं, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जीवनशैली, अंचल इत्यादि के अलावा भाषा और धर्म जातीयता के महत्वपूर्ण प्रतीक बन गए हैं।

जातीयता की तीसरी धारणा इसे एक सामूहिक, साझी पहचान की चेतना के रूप में परिभाषित करती है। समान उत्पत्ति या वंशक्रम और सांस्कृतिक विशिष्टता दोनों को अलग-अलग या एक साथ जातीयता को परिभाषित करने के लिए अब पर्याप्त नहीं माना जाता। किसी समूह में जो मौजूद है वह महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि उसमें जो देखा और माना जाता है, उसे ही जातीयता के आधार के रूप में लिया जाता है। इसे सरल तरीके से कहें तो शारीरिक, मनोवृत्तीय, व्यावहारिक और सांस्कृतिक विशेषताओं का समान रूप से होना ही जातीयता की भावनाएं जगाने के लिए पर्याप्त नहीं होती बल्कि समूह को अपने आपको अन्य से भिन्न और विशिष्ट देखना-समझना होता है, जिसका यही अभिप्राय है कि उसके सदस्यों को अपने आपको एक समूह के रूप में दर्शाना चाहिए।

9.3.1 जातीय समूह

पॉल ब्रास के अनुसार जातीय समूह को परिभाषित करने के तीन तरीके हैं: (क) उसे उसकी वस्तुनिष्ठ विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है, (ख) उसे उसमें प्रचलित व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं और (ग) व्यवहार के आधार पर पारिभाषित किया जा सकता है। इस तरह पहली परिभाषा का यह मतलब निकलता है कि एक समूह में कुछ ऐसी विभेदी *वस्तुनिष्ठ सांस्कृतिक विशेषताएं* विद्यमान होती हैं जो उसे अन्य समूहों से अलग करती हैं जैसे: भाषा, अंचल, धर्म, वेशभूषा इत्यादि जिन्हें हम *जातीय चिन्हक* कहते हैं। इन्हीं के माध्यम से एक जातीय समूह और दूसरे जातीय समूह में विद्यमान भेदों को व्यक्त किया जाता है और उन्हें बनाए रखा जाता है। इसलिए एक जातीय समूह, उदाहरण के लिए, दूसरे जातीय समूह के साथ आर्थिक क्रियाकलाप के उद्देश्य से परस्पर प्रभावी व्यवहार करता है, तो उसके वस्तुनिष्ठ जातीय चिन्हक उसकी पृथक सामूहिक पहचान की निरंतरता सुनिश्चित करते हैं। दूसरा पहलू यानी व्यक्तिनिष्ठ भावनाओं की उपस्थिति का मतलब है समूह में *जातीय स्वचेतना* का मौजूद होना। जैसा कि हमने पीछे बताया है जातीय बंधुता के मूल में वास्तविक या काल्पनिक सामूहिक पहचान होती है। यहां गौर करने की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि एक साझी उत्पत्ति या साझे वंशक्रम का होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि उसमें विश्वास करना। महत्वपूर्ण यह है *लोग क्या सोचते-समझते* हैं। दूसरे शब्दों में जातीयता एक व्यक्तिनिष्ठ रचना या प्रस्थापना है। हम अपने आपको किस तरह देखते हैं यह वही है। इसका तीसरा आयाम व्यवहार है, जो ठोस, विशेष तरीकों की उपस्थिति के बारे में बताता है जिसमें जातीय समूह अन्य समूहों के संबंध में या उनके साथ परस्पर प्रभावी क्रिया के रूप में व्यवहार करते हैं या नहीं करते। इसका मतलब यह है कि एक जातीय समूह का अपना एक मानकीय व्यवहार या आचार संहिता होती है जिसमें नातेदारी, विवाह, मित्रता, धार्मिक अनुष्ठान की रीतियां इत्यादि शामिल हो सकती हैं।

9.3.2 जातीयता के प्रमुख घटक

इस प्रकार जातीय समूह एक ऐसा समूच्चय है समाज जिसे अन्य समूह से भाषा, धर्म, नस्ल , पैतृकगृह, संस्कृति इत्यादि में भिन्न मानते हैं और जिसके सदस्य स्वयं भी अपने आपको दूसरों से भिन्न मानते हैं और जो अपनी वास्तविक या मिथकीय सामूहिक उत्पत्ति और संस्कृति के इर्द-गिर्द रचित साझे क्रियाकलापों में हिस्सा लेते हैं। इन परिवर्ती कारकों के आधार पर एक समूह बमुश्किल जातीय से लेकर पूर्णत: जातीय हो सकता है। वृहत्तर समाज में यह एक ऐसा समुच्चय है जिसकी विशेषता एक वास्तविक या काल्पनिक साझी वंश-परंपरा, एक साझे ऐतिहासिक अतीत की समृतियां जैसे घटक हैं और जिसका सांस्कृतिक केन्द्र-बिन्दु नातेदारी के पैटर्न, धार्मिक संबंध, भाषा या बोली रूप इत्यादि जैसे एक या अधिक सांकेतिक घटक होते हैं। इसके अलावा जातीय समूह के सदस्यों में एक ही जाति का होने की चेतना भी इसके लिए उतना ही प्रासंगिक है। इस प्रकार जातीयता और जातीय समूहों की अधिकांश परिभाषाएं वस्तुनिष्ठ और अनैच्छिक बाहरी चिन्हकों के साथ-साथ व्यक्तिनिष्ठ और ऐच्छिक आंतरिक चेतना को इसका प्रमुख घटक मानकर चलती हैं।

9.3.3 जातीयता के प्रमुख घटक

जातीयता के दो प्रमुख घटकों यानी वस्तुनिष्ठ बाह्य चिन्हकों और व्यक्तिनिष्ठ चेतना को ही अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इसका कारण यह है कि आनुंवशिक और सांस्कृतिक समानताओं को सामाजिक अस्तित्व के लिए "स्वीकृत" माना जाता है मगर यह भी जातीयता की आंशिक व्याख्या है क्योंकि यह इस बुनियादी प्रश्न का समाधान नहीं करती है कि आखिर इस चेतना को कौन जन्म देता है। कूपर और स्मिथ (1969) और गैस्टिल (1978) जैसे विद्वानों का यह मानना है कि जब विभिन्न जातीय समूह एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं और परस्पर प्रभावी क्रिया करते हैं तो इससे जातीय चेतना उत्पन्न होती है। मगर यह भी संतोषजनक व्याख्या नहीं है कि संपर्क को हो जाने मात्र से जातीय चेतना आ जाती हो। इसलिए इस प्रश्न का समाधान करने के लिए जरूरी है कि सांस्कृतिक जातीयता और राजनीतिक जातीयता में भेद स्पष्ट हो।

बोध प्रश्न 1

1) जातीय समूह क्या है? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) जातीयता के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य पर पांच पंक्तियां लिखिए।

....

....

....

....

....

9.4 समकालीन परिप्रेक्ष्य

कुछ ही समय पहले जातीयता पर दो प्रमुख परिप्रेक्ष्य उभरे हैं। इन समकालीन परिप्रेक्ष्यों में एक नृवैज्ञानिक और दूसरा राजनीतिक परिप्रेक्ष्य है। जातीयता का नृवैज्ञानिक या सांस्कृतिक दृष्टिकोण साझे सांस्कृतिक मूल्यों और प्रथाओं में विश्वास को लेकर चलता है। इस अर्थ में, जातीय समूह को उसके सांस्कृतिक पहलुओं की रोशनी में परिभाषित किया जाता है जैसे सामूहिक प्रथाएं, संस्थाएं, धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि। जातीयता की यह धारणा इस प्रकार्यवादी दृष्टिकोण पर आधारित है कि लोगों को कहीं न कहीं एक दूसरे से लगाव की भावना की जरूरत पड़ती है जो उन्हें दबावों या संकटकाल में टिके रहने की शक्ति देती है। यह शक्ति उन्हें जातीय पहचान से प्राप्त होती है। ऐसा माना जाता है कि नगरीकरण के उदय, आर्थिक उन्नति, प्रौद्योगिक उन्नति, जनशिक्षा, जनसंचार माध्यमों के विकास के साथ-साथ व्यक्ति को अपनी परंपराओं और आद्य पहचान के खोने का डर भी रहता है। मगर इस प्रक्रिया में जातीय पहचान कमजोर होने के बजाए और अधिक मजबूत होती है क्योंकि एक बड़े समाज में व्यक्ति को किसी न किसी किस्म की पहचान की जबर्दस्त जरूरत महसूस होती है। यह पहचान राज्य से छोटी मगर परिवार से बड़ी होती है।

9.4.1 जातीयता और प्रकार्यवाद

गौर करने की बात यह है कि प्रकार्यवाद की हमेशा से यह धारणा नहीं रही है। असल में आरंभ में इसकी धारणा यह थी कि जातीय समूह जैसे 'अप्रचलित' प्रदत्त समुच्चयों का आधुनिक समाज में कोई स्थान नहीं है। यह समझा जाता था कि सर्वमुक्तिवादी और उपलब्धि उन्मुखी आधुनिक समाज में जातीय और सांस्कृतिक भेदों में कमी आती है और पूरा समाज अधिकाधिक समरूप, समांगी हो जाता है। इसके फलस्वरूप जातीय भेद भी क्षीण पड़ जाते हैं। केर और उनकी सहयोगी, रोस्टो और हेडन जैसे कुछ विद्वानों ने इसे बाजार (आर्थिक) शक्तियों की समांगीकारी प्रभाव का फल बताया है। वहीं गेलनर जैसे दूसरे विद्वान कहते हैं कि राष्ट्रवादी (राजनीतिक) रुझानों के उदय ने समाजों को एकता के सूत्र में बांधा जिसके फलस्वरूप सांस्कृतिक और जातीय भेद लुप्त हो जाते हैं।

अभ्यास 1

आधुनिक समाज में जातीयता का अंत क्यों नहीं होता? इस प्रश्न पर अपने सहपाठियों और जानकार लोगों से चर्चा कीजिए। आपको इस चर्चा से जो भी जानकारी हासिल हो उसे अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

मगर इसके विपरीत ग्लेजर जैसे विद्वान कहते है कि आधुनिक समाज में जातीयता लुप्त होने के बजाए बल्कि असल में वह पुनर्जीवित हो जाती है। यही नहीं जातीय पहचान की बढ़ती महत्ता या जातीयकरण का श्रेय आधुनिकीकरण की स्थितियों को ही जाता है। इस प्रकार आइजनस्टैद, मरफी और वालरस्टीन जैसे विद्वान कहते हैं कि उन्हें आधुनिक विश्व में विजातीय करण के कोई लक्षण नजर नहीं आते बल्कि हमें इसमें विशिष्टतावादी रुझान देखने को मिलते हैं। शर्मा भारतीय समाज से उदाहरण देकर इसे अच्छी तरह से सिद्ध करते हैं, जिसमें आधुनिकीकरण के प्रौद्योगिकी, संस्थायी, मूल्यात्मक और व्यवहार संबंधी तमाम लक्षणों के बावजूद जातीयता का सबसे ज्यादा बोलबाला है। उदाहरण के लिए, खानपान, वेशभूषा और आंतरिक सज्जा की दृष्टि से अगर किसी व्यक्ति का घर जातीय है तो उसे उत्तम और सुंदर कहा जाता है। इसी प्रकार यूनानी लोकतंत्र जैसी आधुनिक संस्था ने धर्म, जाति इत्यादि की आध चेतना को फिर से जगा दिया है। संक्षेप में कालांतर के प्रकार्यवादी विद्वान आधुनिकीकरण के बावजूद या उसके कारण भी जातीयता के अटल सत्य को स्वीकार करते हैं।

कोहिमा में एक सब्ज़ी बाज़ार
साभार : प्रो. कपिल कुमार

9.4.2 जातीयता का राज़नीतिक परिप्रेक्ष्य

वर्तमान काल में जातीयता का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य ही अधिक लोकप्रिय है। यह जातीयता के आधार पर एक समूह की राजनीतिक चेतना और उसकी गोलबंदी है। इसके फलस्वरूप कुछ समूह सचेतन रूप से अपनी जातीयता को जोरदार ढंग से पेश करते हैं। कभी-कभी वे अपनी जातीय विशेषताओं को बढ़ा-चढ़ा कर भी पेश करते हैं ताकि वे राजनीतिक स्वायत्तता या संप्रभुता का लक्ष्य हासिल कर सकें। इसका यहां यह तर्क दिया जाता है कि पूंजीवाद के उदय से असमान विकास हुआ है जिसके फलस्वरूप लोगों में संकीर्ण निष्ठाएं और जातीय स्वचेतना प्रबल हो जाती हैं। जातीयता पर अभी तक जितने अध्ययन-शोधकार्य हुए हैं उनमें से अधिकांश साहित्य का मुख्य विषयवस्तु भेदभाव रहा है। ये अध्ययन बताते हैं कि वंचित समूह संसाधनों के वितरण को जिस नजरिए से देखते हैं वह किस तरह से उनमें जातीय चेतना लाता है। उदाहरण के लिए, सांस्कृतिक रूप से बहुविध समाज में एक अल्पसंख्यक समूह को अगर बहुसंख्यक समूह अपने विशेषाधिकारों की सिद्धि के लिए शोषण का रवैया अपनाकर उसे दबाता है तो ऐसी स्थिति में अल्पसंख्यक समूह राजनीतिक जातीयता का विकल्प चुन सकता है। तब भेदभाव का विरोध करने के लिए अल्पसंख्यक समुदाय अपनी एक जातीय पहचान बनाने लगता है या उसे ईजाद कर लेता है। राजनीतिक कारणों के लिए भी समूह आद्यनिष्ठाओं का दोहन भी कर सकते हैं जिनका इस्तेमाल वे अपने राजनीतिक हितों को साधने और अपने सत्ताधिकार को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाने के लिए कर सकते हैं। समूह हितों का प्रतिनिधित्व करने और उन्हें आगे बढ़ाने के लिए जातीयता का इस्तेमाल किस तरह से किया जाता है, इसका एक बड़ा उदाहरण हमें राजनीति में इसके प्रयोग से मिलता है। जातीय समूह राजनीतिक मंच से अपनी स्थिति में बदलाव लाने, अपने आर्थिक कल्याण, शैक्षिक अवसरों, नागरिक अधिकारों इत्यादि के लिए अपनी जातीयता का प्रयोग करते हैं। इसका सीधा सा मतलब यही है कि जातीयता हितों पर आधारित होती

है और जातीय समूह कुछ और नहीं बल्कि हित समूह हैं। शर्मा इन दोनों श्रेणियों को क्रमशः सामान्य और उदीयमान जातीयता की संज्ञा देते हैं। अपने सामान्य अर्थ में जातीयता एक पहचान है जिसका आधार कुछ वस्तुनिष्ठ सांस्कृतिक चिन्हक होते हैं। ये चिन्हक एक समूह के सदस्यों को अपने को दूसरों से अलग करने और दूसरे समूहों द्वारा भी उन्हें अलग पहचानने में सहायक होते हैं। इस अर्थ में, जातीय समूह एक परिबद्ध सांस्कृतिक समूह होता है जिसमें कुछ खास विभेदी लक्षण होते हैं जो उन्हें अन्य समूहों से अलग रखते हैं। यहां हमें विभिन्न समूहों की सांस्कृतिक विविधता की चेतना का पता चलता है। मगर यह चेतना जब राजनीतिक विभेदन बन जाती है तो उदीयमान जातीयता जन्म लेती है जिसकी विशेषता सत्ताधिकार की प्रक्रिया है।

बॉक्स 9.0.1

जातीयता की उत्पत्ति और पुनरुत्थान के मूल में अंतःसमूह संपर्क है यानी जब विभिन्न प्रकार के समूह एक दूसरे के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं तो यह जो आकार लेता है वह उस समाज विशेष में मौजूद स्थितियों पर निर्भर करता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जातीयता का इस्तेमाल शोषित समूह अपनी अस्मिता की मौजूदा मांगों की पूर्ति के लिए करते हैं। जब दबे-कुचले समूहों के लिए अन्य लोगों का प्रभुत्व, उनका वर्चस्व असह्य हो जाता है और वे अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करने लग जाते हैं तो इससे जातीयता उत्पन्न होती है।

9.5 जातीय स्तरीकरण

स्तरीकरण एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा लोगों को उनकी संपदा, सत्ताधिकार और प्रतिष्ठा के आधार पर असमान रूप से श्रेणियों में बांटा जाता है और उसी के अनुरूप उन्हें पुरस्कृत किया जाता है। यह हर समाज का एक अनिवार्य अंग है और यह अलग-अलग रूपों में हो सकता है जैसे वर्ग, जेंडर (सामाजिक-लिंग सोच), नस्ल और जातीयता। सामाजिक स्तरीकरण पर हुए आरंभिक अध्ययनों का मुख्य विषय जाति और नस्ल थे। मगर सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) और जातीयता को इनमें पार्श्व मुद्दों के रूप में लिया गया। पर अब जातीयता और सामाजिक लिंग सोच को सामाजिक स्तरीकरण के अध्ययन-विश्लेषण में महत्व मिलने लगा है। यही नहीं, सामाजिक विभाजन के सबसे पहले रूप में वर्ग की जगह अब जातीय स्तरीकरण ले रहा है क्योंकि अब संपति संबंध जातीय श्रेणीकरण से निर्धारित होने लगे हैं। जातीय पुनरुत्थान और द्वंद्वों का विश्लेषण करने के लिए आंतरिक उपनेशवाद का मॉडल प्रयोग किया जा रहा है। इस मॉडल में प्रभावी समूह द्वारा अल्पसंख्यक समूहों पर राजनीतिक नियंत्रण, उनका आर्थिक शोषण और उन पर सांस्कृतिक वर्चस्व बनाए रखना और फिर इस विषम, संबंध को विचाराधारा की आड़ लेकर न्यायोचित ठहराना, इन सब पहलुओं को उठाया जाता है। जातीय स्तरीकरण की कई बातें स्तरीकरण के अन्य स्वरूपों से मिलती है। जैसेः श्रेणीकरण, असमानता, भेदभाव, शोषण इत्यादि। मगर दोनों में एक महत्वपूर्ण अंतर भी मौजूद है। जातीय समूहों में एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की क्षमता होती है। यह विकल्प वर्ग और सामाजिक लिंग (जेंडर) समूहों को हासिल नहीं है।

9.5.1 जातीय राष्ट्रवाद

जातीय समूह की सदस्यता समाज में व्यक्ति की स्थिति, उसकी हैसियत को तय करती है। यह दो तरीके से होता है। धन, प्रतिष्ठा और सत्ताधिकार जैसे सामाजिक पारितोषिकों का आबंटन अक्सर जातीय आधार पर होता हैं। दूसरा, अधिकांश समाजों में एक या अधिक जातीय समूहों का दूसरे समूहों पर आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मामलों में वर्चस्व होता है। इसलिए जातीय राजनीति जातीय स्तरीकरण का स्वरूप धारण कर सकती है जिसके फलस्वरूप जातीय राष्ट्रवाद का उदय होता है। जैसा कि हमने पीछे कहा है जातीय पहचान का संबंध राजनीतिक आवश्यकतओं और मांगों से हो सकता है। ऐसा तब होता है जब एक बहुविध समाज में अल्पसंख्यक समूह अपने लिए बेहतर सौदा हासिल करने के लिए जातीयता का पत्ता फेंकते हैं। मगर कुछ जातीय समूह इसमें एक कदम आगे बढ़ जाते हैं और राजनीतिक व्यवस्था में हक या एक अंचल पर अपना नियंत्रण या फिर राष्ट्र का दर्जा भी मांगने लग जाते हैं। ये समूह अगर इसमें से किसी भी उद्देश्य में सफल हो जाते हैं तो वे एक राष्ट्रीयता या राष्ट्र बन जाते हैं।

9.5.2 राष्ट्र और जातीय समूह

राष्ट्र, राष्ट्र राज्य, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक इत्यादि धारणाएं पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद के उदय के साथ-साथ उपजीं और शेष विश्व में फैलीं। राष्ट्र शब्द लैटिन शब्द *नैसाई* और लैटिन संज्ञा *नेशोनेम* से बना है जिनका अर्थ क्रमश: 'जन्म लेना' और 'प्रजातिया' 'नस्ल' है। यह ऐतिहासिक रूप से विकसित, भाषा, प्रदेश, आर्थिक जीवन और मनोवैज्ञानिक रचना की स्थायी एकरूपता है जिसे हम साझी संस्कृति के रूप मे देख सकते हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि राष्ट्र एक प्रकार का जातीय संप्रदाय है, जिसका राजनीतिकरण हो चुका है और जिसने राजनीतिक व्यवस्था में समूह अधिकारों को स्वीकार कर लिया है।

बॉक्स 9.02

राष्ट्र के कई अर्थ हैं जैसे देश, समाज, राज्य और जातीय समूह। इसे एक देश के रूप में या एक अकेली स्वतंत्र सरकार यानी राज्य के अधीन संगठित देश के वासियों के रूप में परिभाषित किया गया है। मगर इसे ऐसे लोगों के रूप में भी परिभाषित किया जाता है जो तथाकथित रक्त संबंधों से परस्पर जुड़े रहते हैं जिन्हें हम प्राय: उनके सामूहिक हितों और अंतर्सबंधों में देखते हैं। यहां रोचक बात यह है कि जातीय समूह की भी यही परिभाषा है। राष्ट्र और जातीय समूह को अक्सर एक दूसरे के तुल्य माना जाता है या राष्ट्र को एक प्रकार के जातीय समूह के रूप में देखा जाता है, जिसका अतीत में अपना एक राज्य या उसका मिथक होता है या राज्य का दर्जा पाने की जिसमें तीव्र इच्छा होती है। इस प्रकार के मिथकों, इतिहास और अपेक्षाओं से शक्ति पाकर राष्ट्रवाद लोगों को अक्सर उच्च सामाजिक स्तर, स्वतंत्रता और स्वायत्तता की चाह में जातीय आंदोलन छेड़ने के लिए एकता के सूत्र में बांधने का काम करता है। इस प्रकार जातीय संप्रदाय में जो उनके पास था उसे दुबारा हासिल करने की इच्छा स्वायत्तता और राजनीतिक संप्रभुता की मांग को जन्म देती है जिससे वह एक राष्ट्रीय समुदाय का स्वरूप धारण कर लेता है।

ऊमेन के अनुसार राष्ट्र और जातीय समुदाय में कई विशेषताएं समान रूप से पाई जाती हैं पर दोनों में एक महत्वपूर्ण बिंदू पर भेद दिखाई देता है जो भू क्षेत्र या प्रदेश होता है। एक जातीय समूह राष्ट्र का स्वरूप तभी धारण करता है जब वह अपनी पहचान को एक क्षेत्र/प्रदेश या अंचल विशेष से जोड़ कर देखने लगता है। इसके विपरीत एक राष्ट्र जातीय समुदाय का स्वरूप तब धारण करता है जब उसके सदस्य अपनी मातृभूमि से अलग हो जाएं। जातीय समूह का कोई भी लक्षण उसके अन्य लक्षणों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं ठहराया जा सकता है। प्रत्येक लक्षण को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में महत्ता मिलती है। परंतु क्षेत्र के बिना राष्ट्र को एक राष्ट्र की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसलिए ऊमेन जातीय समूहों को "निष्क्रिय राष्ट्र" की संज्ञा देते हैं जिसमें राष्ट्र का स्वरूप धारण करने की संभावना विद्यमान होती है। वहीं राष्ट्र को वह "सक्रिय जातीयता" कहते हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति जातीय घटकों से ही होती है। इसी प्रकार बैकाल जैसे विद्वान ने भी जातीय समूहों के लिए 'लघु राष्ट्र' (माइक्रो नेशन) और राष्ट्रों के लिए "वृहत्तर-जातीय" (मैक्रो-नेशन) शब्दों का प्रयोग किया है। इस तरह वह भी ऊमेन की इस व्याख्या की पुष्टि करते दिखाई देते हैं कि दोनों में भेद करने वाला मुख्य कारक भू क्षेत्र है।

बोध प्रश्न 2

1) राष्ट्र और जातीय समूह में क्या संबंध है? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

....

2) जातीय राष्ट्रवाद क्या है? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

9.5.3 राष्ट्रवाद और जातीयता

राष्ट्रवाद लोगों की अपनी एक स्वशासी राजनीतिक इकाई को स्थापित करने और उसे चलाने की प्रकट भावना है। समकालीन विश्व में यह आधुनिक राज्यों के सृजक और विध्वं दोनों रूपों में सबसे प्रभावशाली शक्ति प्रमाणित हुई है। राष्ट्रवाद और जातीयता दोनों परस्पर जुड़े हैं, लेकिन दोनों भिन्न भी हैं। जातीयता राष्ट्रवाद का रूप धारण कर सकती है और राष्ट्रवाद का आधार हमेशा वास्तविक या कल्पित जातीय संबंध बनते हैं। पर राष्ट्रवाद के मूल में तीन मुख्य बातें निहित होती हैं: स्वायत्तता, एकता और पहचान। स्वायत्तता का अभिप्राय उस प्रयास से है जिसे लोग अपनी नियति को खुद तय करने और खुद को बाहरी बेड़ियों से मुक्त करने के लिए करते हैं। एकता का मतलब आंतरिक विभाजनों, मतभेदों को समाप्त कर एकजुट हो जाना है और पहचान का तात्पर्य एक समूह के प्रयास से है जो वह अपनी प्रामाणिक सांस्कृतिक विरासत और पहचान को हासिल करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए करता है। इस प्रकार राष्ट्रवाद जातीयता का एक रूप है जिसमें एक खास जातीय पहचान एक राजनीतिक एजेंडा हासिल करके ठोस और संस्थागत रूप धारण करती है। राष्ट्रों का निर्माण तब होता है जब एक बहुजातीय राज्य में कोई जातीय समूह एक स्वचेतन राजनीतिक इकाई में परिवर्तित हो जाता है। इस तरह संप्रभुता और आत्मनिर्णय ही राष्ट्रवाद को जातीयता से अलग करते हैं।

अभ्यास 2

अपने अध्ययन केन्द्र के छात्रों और अन्य जानकार व्यक्तियों के साथ राष्ट्रवाद और जातीयता के बीच संबंध पर चर्चा कीजिए। इससे आपको जो भी जानकारी हासिल होती है उसे अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

9.5.4 राष्ट्रीयता का विकास

ब्रास के अनुसार राष्ट्रीयता का निर्माण दो चरणों में होता है। पहले चरण में एक जातीय श्रेणी का एक सुमदाय में रूपांतरण होता है। इस प्रक्रिया में कुछ परिवर्तन होते हैं, जैसे एक स्व-चेतन भाषायी एकता का सृजन, जाति संगठन का निर्माण इत्यादि। यह बहुजातीय समाज में आधुनिकीकरण के आंरभिक दौर में होता है जिसमें विभिन्न प्रकार के सामाजिक विभाजन विद्यमान रहते हैं। दूसरे चरण में समूह के सदस्यों या समूचे समूह के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की पैरवी और फिर उन्हें प्राप्त करना शामिल है। यह समूह जब अपने प्रयासों से सामूहिक अधिकारों को राजनीतिक कारवाई और गोलबंदी के जरिए हासिल करने में सफल हो जाता है तो वह जातीयता के दायरे से निकल जाता है और खुद को एक राष्ट्रीयता के रूप में स्थापित कर लेता है।

मगर जातीयता क्यों राष्ट्रीयता में बदल जाती है? इस प्रश्न का समाधान सापेक्षिक वंचना के दृष्टिकोण से मिलता है जो हमारा ध्यान कुंठा की भावना की और खींचता है। जब लोगों को लगता है कि जो उन्हें जायज रूप से मिलना चाहिए और जो उन्हें असल में मिलता है उसमें भारी अंतर है तो इसी से उनमें कुंठा की यह भावना उत्पन्न होती है। इस प्रकार पराधीन या दबाए हुए समूहों को जब प्रभावी समूहों द्वारा स्थापित नियमों के अनुसार उचित सफलता नहीं मिल पाती है तो उनकी प्रतिक्रिया की प्रकृति जातीय वैमनष्य का पुट लिए रहती है। यह जातीय वैमनष्य या विरोध (क) देशीय लोगों के जमीन और संस्कृति के अधिकार की लड़ाई (ख) अल्पसंख्यक समूहों द्वारा समान आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकार

हासिल करने के प्रयासों, (ग) दुर्लभ संसाधनों को प्राप्त करने के लिए जातीय समूहों में स्पर्धा और (घ) पृथक राष्ट्र के आंदोलन का स्वरूप धारण कर सकता है।

9.5.5 जातीय राष्ट्रवाद और भारत

शर्मा के अनुसार जातीय वैमनष्य ने भारतीय राज्य के लिए कई गंभीर खतरे पैदा कर दिए हैं। ये खतरे इस प्रकार हैं:

जातिवाद: यह जातीय पहचान और आधुनिक हितों का एक विचित्र मिश्रण है जिसमें जातीय समूह अपने आर्थिक और राजनीतिक हितों के लिए जातिगत विचारधाराओं का प्रयोग करता है। जैसे, एक राजनीतिक दल एक जाति समूह विशेष से वोट मांगता है।

सांप्रदायिकता: यह धर्म और राजनीति के बीच एक 'अनैतिक' गठजोड़ है जिसमें राजनीतिक या आर्थिक हितों की सिद्धि के लिए धर्म का प्रयोग किया जाता है। जैसे, अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करने के लिए भारतीय जनता पार्टी हिन्दुत्व की विचारधारा को इस्तेमाल कर रही है।

स्वसंस्कृतिवाद: इसे हम देशीयता भी कहते हैं। यह 'भूमि-पुत्र' जैसी धारणा को लेकर चलता है जिसमें आंचलिक पहचान उग्र जातीय संघर्ष का स्रोत बन जाती है। जैसे बंगाली मूल के विदेशियों को निकाल बाहर करने का असम आंदोलन।

जातीय राष्ट्रवाद: यह जातीय समूह का राष्ट्रीयता में कायांतरण है। इसमें एक अंचल विशेष में स्वायत्त शासन की मांग या अलगाव और एक स्वयंभू राष्ट्र के रूप में मान्यता की मांग उठाई जा सकती है। जैसे, पंजाब का खालिस्तानी आंदोलन और कश्मीर में चल रहा पृथकतावादी आंदोलन।

9.6 सारांश

सबसे महत्वपूर्ण और आखिरी प्रश्न यह है कि आखिर वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके चलते जातीय विविधता समाज को संघर्ष और भेदभाव की दिशा में ले जाती है और कब इसकी परिणति सांस्कृतिक समृद्धि और सामाजिक अनुकूलनशीलता में होती है। अवधारणा की दृष्टि से जातीयता किसी समूह द्वारा अपनी पहचान की तलाश और इस पहचान को सार्वजनिक मान्यता देने की मांग है। मगर जातीयता के पीछे उस समूह का एक व्यावहारिक ध्येय भी होता है, जैसे, आर्थिक उन्नति, जीवन स्तर में सुधार, अधिक प्रभावशाली राजनीतिक व्यवस्था, अधिक सामाजिक न्याय की मांग और विश्व राजनीति के विशाल रंगमंच पर भूमिका हासिल करने की अपेक्षा ताकि वह राष्ट्रों में अपना प्रभाव बढ़ा सके।

जातीय विचारधारओं के दृश्यपटल से अदृश्य होने की निकट भविष्य में कोई संभावना नहीं है बल्कि जातीयता बनी रहेगी। जातीय व्यवहार, मनोवृत्तियां और पहचान सिर्फ इसी से तय होती रही हैं, हो रही हैं और होती रहेंगी कि स्वयं जातीय समूहों में क्या हो रहा है। बल्कि वृहत्तर समाज में क्या परिवर्तन हो रहे हैं और समाज जातीय समूहों से किस तरह व्यवहार कर रहा है, इससे भी वे तय होंगी। अधिकांश बहुजातीय समाजों में संपदा, सत्ताधिकार और हैसियत को लेकर विभिन्न जातीय समूहों में भिन्नताएं पाई जाती हैं।

हालांकि इसकी परंपराएं कमजोर पड़ती जा रही हैं मगर इसके बावजूद सामाजिक स्तरीकरण में जातीयता एक बड़ा कारक है। इसी के फलस्वरूप अधिकांश लोग जब भी अपनी पहचान जांचेंगे वे सबसे पहले अपनी जातीयता के बारे में ही सोचेंगे। इस समस्या का समाधान यही है कि निजी जातीय पहचान और मानवीय पहचान को समरस बनाया जाए, उनमें एकात्मता स्थापित की जाए। हर समाज को ऐसा वातावरण बनाना जरूरी है जो जातीयता के अधिकार की रक्षा करे, आपसी आदर भाव को बढ़ावा दे और जातीय पहचान को व्यक्ति का अपेक्षतया छोटा हिस्सा बनाने की दिशा में भी काम करे। जातीय विशिष्टता के साथ-साथ मानव निजता और राष्ट्रीय समाज के साथ एकीकरण के मुद्दे भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं

इसलिए जातीय विशिष्टता को इनसे अधिक महत्व नहीं मिलना चाहिए। ऐसा संतुलन स्थापित किए जाने की जरूरत है जिससे जातीय पुनरुत्थान से निजी व्यक्तित्व और राष्ट्रीय अखंडता को कोई खतरा पैदा न हो और न ही जातीय पहचान को निजता और राष्ट्रवाद से कोई खतरा हो।

9.7 शब्दावली

सांस्कृतिक जातीयता : यह जातीयता को साझे सांस्कृतिक मूल्यों और प्रथाओं के रूप में परिभाषित करने का नृवैज्ञानिक तरीका है।

सांस्कृतिक चिन्हक : ये वस्तुगत सांस्कृतिक विशेषताएं हैं, जैसे, भाषा, धर्म, वेशभूषा इत्यादि। इनके माध्यम से समूहों के बीच अंतर स्पष्ट होते हैं और उनमें दूरी बनी रहती है।

उदीयमान जातीयता : जब राजनीतिक विभेदन और लाभ के लिए सांस्कृतिक जातीय पहचान का इस्तेमाल किया जाता है।

जातीय चेतना : किसी एक समूह के सदस्यों का यह व्यक्तिनिष्ठ नजरिया कि वे ऐसा समूह हैं जो दूसरों से भिन्न, एकदम अलग हैं।

जातीय समूह : एक ऐसा समूह जिसे समाज में अन्य लोग भाषा, धर्म, नस्ल, पैतृक गृह, संस्कृति इत्यादि की दृष्टि से भिन्न मानते हैं और जिसके सदस्य खुद को दूसरे लोगों से भिन्न मानते हैं और जो एक वास्तविक या कल्पनिक साझे वंशमूल और संस्कृति के इर्दगिर्द रची गई साझी गतिविधियों में भाग लेते हैं।

जातीय राष्ट्रवाद : यह जातीय समूहों द्वारा अपने लिए राजनीतिक और प्रशासनिक स्वायत्तता, राष्ट्रीय दर्जा या स्वतंत्र देश की मांग है।

जातीय स्तरीकरण : समाज में जातीयता के आधार पर वित्तीय, सत्ताधिकार और सांस्कृतिक संसांधनों का असमान वितरण।

जातीयता : किसी सामाजिक समूह की एक साझी (वास्तविक या कल्पनिक) नयी, भाषायी या सांस्कृतिक विशेषताओं पर आधारित पहचान।

अंतरराष्ट्रीय उपनिवेशवाद : इस अवधारणा का प्रयोग एक ही समाज में आंचलिक राजनीतिक और आर्थिक विषमताओं और किसी समाज में अल्पसंख्यक समूहों की पददलित स्थिति और शोषण को बताने के लिए किया जाता है।

राष्ट्र : एक देश या देश की जनसंख्या जो समान रक्त संबंधों से जुड़ा हो और जिसका संचालन सिर्फ एक सरकार करती है।

राष्ट्रवाद : किसी राष्ट्र या उसके लोगों की स्वशासन राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करने की इच्छा की अभिव्यक्ति है।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बैकाल एप्रिल (1997) "सिटिजनशिप एंड नेशनल आइडेंटिटी इन लैटिन अमेरिका: द परसिस्टिंग सैलिएंस ऑफ रेस ऐंड एथनिसिटी" टी० के० उमेन (संपा०) *सिटिजनशिप ऐंड नेशनल आइडेंटिटी: फ्रॉम कॉलोनियलिज्म टू ग्लोबलिज्म* में नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशंस

ब्रास, पॉल आर., (1991) *"एथनिसिटी ऐंड नेशनलिज्म: थ्योरी ऐंड कॉम्प्रिजन,"* सेज पब्लिकेशंस

बर्गस, एम.ई. (1978) "द रिसर्जेस ऑफ एथनिसिटी: मिथ और रिएलिटी", *एथनिक ऐंड रेशिसल स्टडीज*

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) एक जातीय समूह की कुछ वस्तुनिष्ठ सांस्कृतिक विशेषताएं होती हैं जो उन्हें अन्य समूहों से अलग करते हैं। दूसरा, इसमें जातीय स्वचेतना होती है। इस प्रकार जातीय समूह की सामूहिकता है जो अपने आपको औरों से भिन्न मानता है और भाषा, धर्म, पैतृक गृह, इत्यादि की दृष्टि से भी अपने को विशिष्ट और भिन्न मानते हैं।

2) जातीयता के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का अभिप्राय जातीयता के आधार पर किसी समूह में राजनीतिक चेतना और उसका गोलबंद होना है। इस आधार पर ये समूह सचेतन रूप से अपनी जातीयता का दावा पेश करते हैं, यहां तक कि वे अपनी जातीयता को बढ़ा-चढ़ाकर भी पेश करते हैं ताकि वे राजनीतिक स्वायत्तता या संप्रभुता का लक्ष्य हासिल कर सकें।

बोध प्रश्न 2

1) राष्ट्र भाषाओं की स्थायी एकरूपता, अस्थायी आर्थिक जीवन और संस्कृति के रूप में मनोवैज्ञानिक ढांचा है जिसके विकास के सूत्र इतिहास से जुड़े होते हैं। राष्ट्र एक तरह का जातीय समुदाय है जिसका राजनीतिकरण होता है और राजनीतिक व्यवस्था में जिसके अधिकार होते हैं। राष्ट्र और जातीय समूहों में अनेक विशेषताएं समान रूप से पाई जाती हैं मगर अस्थायी तोर पर इनमें भिन्नता होती है। एक जातीय समूह तभी राष्ट्र का स्वरूप ले लेता है जब वह अस्थायी रूप से अपनी पहचान बना लेता है।

2) जातीय वैमनष्य राज्य के लिए अनेक प्रकार के खतरे पैदा करता है जिसमें मुख्यत: जातिवाद, साम्प्रदायिकता और देशीयता शामिल हैं। सबसे बड़ा खतरा जातीय-राष्ट्रवाद से उत्पन्न होता है जो एक जातीय समूह का राष्ट्रीयता में रूपांतरण है। भारत में पहले भी और आज भी इसके प्रयास हुए और चल रहे हैं।